International Journal of Applied Research 2016; 2(2): 575-577

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(2): 575-577
www.allresearchjournal.com
Received: 25-12-2015
Accepted: 26-01-2016

राजेश
गांव अरनियांवाली, जिला सिरसा, हरियाणा, भारत

Correspondence
राजेश
गांव अरनियांवाली, जिला सिरसा, हरियाणा, भारत

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में सामाजिक अन्तविरोध

राजेश

प्रस्तावना

समाज में जब आदर्श और यथार्थ के बीच, विचार और कार्य के बीच अन्तविरोधों की संघर्षमयी दृष्टि होती है तो व्यंग्य की प्रेरणा शक्ति उभरकर व्यंग्य की दृष्टि करवाती है। उपन्यास भी एक प्रकार की मनोवृति है, जिसका मूल विरोधाभास में निहित है। मन के प्रतिकूल जब कोई भी स्थिति आती है तो विरोधाभास जागृत होता है। ऐसी मनोदशा में आंतरिक विरोध का प्रकटीकरण उपन्यास 'बड़ी दीदी' के माध्यम से हुआ है।[1]

समाज में जब विभिन्न प्रकार की विसंगतियां उत्पन्न होती है तभी साहित्यकारों को विघटित मूल्यों पर व्यंग्य करने की कला को दर्शाने का अवसर प्राप्त होता है। इक्कीसवीं शदी के उपन्यास साहित्य में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण, आतंक, साम्प्रदायिकता, पक्षपातपूर्ण प्रशासन, राजनीतिक भाई–भतीजावाद आदि विघटित मूल्यों से जुड़ी परिस्थितियों पर दृष्टिपात किया गया है तथा समाज की अनेक कुरीतियां और समस्याओं का अवलोकन करके उनकी समीक्षा प्रस्तुत की गई है। आधुनिकता के इस युग में सांस्कृतिक संघर्ष व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलू परम्परागत मूल्यों, नवीन मूल्यों, सामाजिक स्थिति और आर्थिक परिस्थितियों को भी प्रभावित करता है। व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार, नैतिक मूल्यों में गिरावट, पारिवारिक संबंधों में तनाव, नारी दुर्दशा, आडम्बरों का व्यर्थ दिखावा आदि को हम सांस्कृतिक विघटन के संदर्भ में विवेचित कर सकते हैं। उपन्यासकारों ने सामाजिक परिस्थितियों को विघटन का आधार बनाया है। आलोच्य उपन्यासों में लेखक ने सामाजिक व्यवहार और उसमें व्याप्त विसंगतियों तथा अपने कटु अनुभवों को व्यक्त करने के लिए अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यंग्य के बाण छोड़े हैं। आधुनिकता के रंग में रंगा व्यक्ति अपने आचरण में जिन प्रवृतियों को बेझिझक अपना रहा है, उनमें अवसरवादिता, रिश्वतखोरी, बेईमानी आदि कुरीतियां समाज के स्वरूप को बदरंग और सामाजिक व्यवस्था को खोखला बनाती जा रही है ।

टुच्चे, आवरा, शातिर, भ्रष्ट, चिकने घड़े, अपराधी, आतंकी, भयावह, विद्रूप, अवसरवादी, दकियानूस, हत्यारे, अर्थ–संग्रह के लिए टींसती जिजीवशा लिए, मूल्यों को धता देकर कमीनगी की हद को पार किये लोगों की जो दुनिया सामने आती है – उसे समाप्त करने के लिए आलोच्य उपन्यास रूपी ब्रह्मास्त्र लेकर प्रस्तुत हुए। इनके पात्रों के भ्रष्ट संकल्प एवं हठ अमहत्वपूर्ण नहीं हैं। आलोच्य उपन्यासों में आज के मनुष्य का त्रासकारी अनुभव छिपा है। आज की विषमताओं में पला उपन्यासकार या तो जीवन के प्रति रोमानी भावुकता लिए जिंदा रह सकता था, या कामिकल बनकर। सच यह है कि केवल कामिक एप्रोच द्वारा ही मानव की त्रासदपूर्ण और हास्यास्पद स्थिति का स्वतंत्र और स्पष्ट अनुभव प्राप्त किया जा सकता है।

आज साहित्यकार अपने लेखन में अपना ही मजाक उड़ाता है। अपने तिरस्कार से जुड़ा अधिकांश साहित्य हमें एक फेंटेसी के रूप में ही आज के आदमी और उसके, विसंगत परिवेष में छटपटाते हुए विघटन बोध के स्वरूप से सामना कराता है। उपन्यासों में जीवन के प्रति कामिक, कुंठाहीन और सहज एप्रोच हमें सर्वत्र मिलेगी, जो इनको अपने से मुक्त होकर जीवन को देखने की क्षमता देती है। उपन्यास 'दहशतगर्द' समाज में भ्रष्टाचार फैलाने वाले कर्मचारी, अधिकारी, शिक्षक, व्यापारी, राजनेता, पुजारी, सामाजिक कार्यकर्ता, नेता–अभिनेता, विद्यार्थि आदि सब की सही तकलीफ को पकड़ लेते हैं।[2] इनको देखकर आम आदमी का –एक ओर तो संस्कृति के प्रति दिमागी सूनापन है, दूसरी ओर एक यांत्रिक और अमानवीय परिवेष जो सिर्फ सोचने पर विवश करता है, उत्तेजनाएं देता है, टकराने पर एक आंतरिक यंत्रणा देता है। अकेलेपन, असहायता, निरर्थकता और अस्तित्व पीड़ा के बोध में दर्दाती हुई केवल यंत्रणा देता है; समाधान नहीं। आज का आदमी व्यक्ति रूप में अपमानित और समूह रूप में दमित है। अपमान और दमन का यह दुष्चक्र कैसे समाप्त होगा.....?[3] यह है उपन्यासकारों की पीड़ा और इस पीड़ा से मुक्त न हो पाने की छटपटाहट उसके लेखन में स्पष्ट रुप से ध्वनित है।

इसका एक कारण यह भी है कि आज का लेखक स्वयं भी सामान्यजन ही है, भ्रष्ट–राजनीति, रूग्ण सामाजिक व्यवस्था और विकृत आर्थिक स्थितियों ने आम आदमी की जिंदगी को दब्बू, खोखला और अपाहिज बना दिया है। उपन्यासकार कहाँ जाएं?

आलोच्य उपन्यासों में सांस्सकृतिक विघटन के प्रमुख मनोग्रंथियों– वैयक्तिक विवशता, टूटन–पीड़ा, विद्रोह, कुंठा, मानसिक तनाव, रुग्णता, अभिवृत्ति, कामेच्छा, अंतर्मन्थन, द्वंद्व, उन्माद, संत्रास, वेदना, अवसाद, खिन्न मनस्कता, पलायन, आत्महीनता, दैन्य, दुश्चिन्ता, मनोग्रस्तता, आशा–भग्नाशा एवं भावात्मक प्रवृत्तियों को स्थान देकर अपनी व्यंग्य–शैली को एक नई दिशा प्रदान की। विवेच्य उपन्यासों में इन कुमति–सुमति से जुड़े चरित्रों का उद्घाटन मानव मन में दमित वासनाओं, अंतर्द्वंद्वों, अतृप्त काम की लक्ष्य प्रेरित एवं लक्ष्य विकृत स्थितियों, भूलों, स्वप्नों, प्रतीकों, दिवास्वप्नों, आत्म–भावना, प्रभुत्व–कामना, हीनभावना–ग्रंथि, काम–वासना के अंतर्गमन तथा बहिर्गमन, पलायन आदि की क्रिया–प्रतिक्रिया के संदर्भ में हुआ है।

इस प्रकार आलोच्य उपन्यास देश में चल रहे साधारण जन के संघर्ष के साथ चलते हैं और साधारण जन की जिंदगी, व्यवस्था के खिलाफ उनकी लड़ाई, अपनी जिंदगी को बेहतर बनाने की उसकी आकांक्षाओं से आत्मसात् करते हैं। इक्कीसवीं शदी के उपन्यास सीधे–सीधे विघटित सांस्कृतिक–बोध से जुड़ते हैं, क्योंकि वे एक अनिवार्य कटाक्ष को अर्थ देते हैं।; डॉ0 अजय शर्मा कृत 'खुली हुई खिड़की' वे मौजूदा व्यवस्था में आदमी की स्थिति का यथार्थ चित्रण करते हैं, उस यथार्थ की भयावहता, विद्रूपता को तेजी से उभारते हैं, फलतः उस यथार्थ के बदले एक नए यथार्थ के, नई व्यवस्था, के लिए पुरानी परम्परागत व्यवस्थाओं के खिलाफ आवाज उठाते हैं। (अमृता प्रीतम कृत 'पिंजर') निःसंदेह इक्कीसवीं शदी के उपन्यास व्यक्ति की चिन्तानुकल संवेदना के स्तर पर बाहरी और भीतरी दुनियाओं से जबरदस्त टकराहट अनुभव करने वाले माने जा सकते हैं।

बाल मजदूरी एक जघन्य अपराध है जो हमारे भारतीय समाज पर एक बहुत बड़ा कलंक है। कहने को तो यह नारा दिया जाता है कि 'आज के बच्चे कल के नेता' लेकिन जिस बच्चे को रहने को घर नहीं, खाने को भोजन नहीं वह कैसा नेता होगा? कैसे समाज का नव–निर्माण करेगा? सभी जानते हैं कि बाल मजदूरी एक अपराध है लेकिन कोई दूर नहीं करना चाहता। वर्तमान समय में भी कई ऐसे परिवार हैं जिनमें दास रखे गये हैं। (गली नम्बर तेरह) 'ज्ञानप्रकाश विवेक' का लेखक अपने मित्र के घर जाता है तो नौकर की हालत देखकर उसकी सहायता करना चाहता है लेकिन नौकर स्पष्ट मना कर देता है वह कहता है – ''मैं इनके घर का नौकर नहीं गुलाम हूँ।'' ''गुलाम''?

पैसे के कारण पारिवारिक रिश्तों में तनाव भी परिवार को विघटन के कगार पर लाकर खड़ा कर देता है। पिता व्यवसाय में इतना व्यस्त हैं कि दिन–रात उसे फुर्सत ही नहीं है कि वह बच्चों के पास दो मिनट का भी वक्त बिताये। वह यह सारी जिम्मेदारी औरत पर छोड़ता है कि वही घर देखे। औरत कहती है पति देखे। एक–दूसरे पर जिम्मेदारी फैंकने के कारण परिवार विघटित होना शुरू हो जाता है। 'कमलिनी कौल' में 'तृशिता की पात्र लालिमा घर छोड़कर जब भाग जाती है तो सेठ सारा दोष अपनी पत्नी पर मढ़ता हुआ कहता है – ''हाँ, यह भी पूछने की बात है। पहले हमें माल बनाना पड़ता है और फिर खरीददार ढूँढ़ना पड़ता है। माल बिक गया तो ठीक नहीं तो मिट्टी के मोल बेचना पड़ता है। एक व्यापारी की जिन्दगी 'टेंशन' से भरी होती है समझी न।''

''हाँ, मैं यह समझ रही हूँ।''

''तू जानती है मजदूर क्लास से काम लेना आसान नहीं है। उन्हें पीना–पिलाना पड़ता है या कभी खरीददारों को भी खुश करना पड़ता है। फिर दिन का थका हारा मैं भी पी लेता हूँ तो क्या हुआ? अब यह आदत नहीं छूटने की। बता मैं बच्चों के लिए कहाँ से समय लाऊँ? घर का खर्चा, नौकरों का खर्चा, लड़कियों की शादी का खर्चा सिर पर खड़ा है, मैं अकेला क्या–क्या करूँ? हताश स्वर में सेठ ने कहा।''[4] 'ज्ञान प्रकाश विवेक' का 'गली नम्बर तेरह' में पैसे के कारण एक ऐसे परिवार का विघटन दिखाया है जिसके रिष्ते भी बिखर चुके हैं। कुमार के घर में उसके पिता व बहन कुंवारी थी। नौकरी की तलाश में गया कुमार दिल्ली सैट होने के बाद पीछे मुड़कर देखा भी नहीं। उसकी बहन से मिलने जब लेखक घर गया तब कुमार की बहन घर का मेन स्विच ठीक कर रही थी। तो लेखक ने डांटा कि करंट लग जाएगा। तब वह बोली फ्यूज उड़ गया था। वहीं लगा रही थी। लेखक ने पूछा ये काम तुम कर सकोगी? ''कुमार की बहन बड़े संयत स्वर में बोली, ''कठिन वक्त हमें अपने ढंग से जीने का हौंसला भी दे देता है। किसी के न होने का खालीपन कुछ दिन तक तड़पाता है फिर वो खालीपन भी रूटीन हो जाता है . . .।''[5]

कृषक जहाँ खेती से अन्न उत्पन्न करके अपनी आजीविका चलाता है वही ब्राह्मण पूजा–पाठ व बनिया जैसी जाति सूदखोरी से अर्थ संग्रह करती थी। महाजन जाति सूद दूसरे लोगों से ज्यादा लेती थी जिससे निम्न वर्ग की कई पीढ़ियां कर्जे में डूबी रहती थी। हमारे धार्मिक ग्रन्थों में भी ब्याज लेना उचित बताया गया है। लेकिन एक निश्चित सीमा तक। मनुस्मृति के अष्टम अध्याय में मनु ने ब्याज के बारे में लिखा है–

अर्थशास्त्र के विद्वान द्वारा विहित धन को बढ़ाने वाले वृद्धि अर्थात् ब्याज ले, किंतु ब्याज लेने वाला मनुष्य सौ पर अस्सीवां भाग अर्थात् सवा रूपया सैकड़ा ब्याज मासिक ग्रहण करें अर्थात् इससे अधिक ब्याज न ले।[6] 'ढलती हुई शाम', 'अनुज प्रताप सिंह' के पात्र को अपनी पत्नी के बीमार होने पर 1000 रूपये की ज़रूरत होती है जो उसके माता–पिता उसे रूपये नहीं देते, तब वह गाँव के पंडित जी के पास जाता है। तो पंडित जी 1000 रूपये इस शर्त पर देने को तैयार हुए जब वह घर के सामने वाले खेत उसके नाम कर दे। ''देख भाई। तुम्हारा और मेरा कई पीढ़ियों का संबंध है। मैं यह नहीं चाहता कि तुम किसी गलत आदमी के पास जाकर फंस जाओ और बाप–दादे की सारी कमाई मुफ्त में गवां दो।

'गहने तो तुम्हारे पास होंगे। तुम्हारी बीवी और माँ के गहने तो होंगे ही। ये किस दिन काम आएँगे? तुम इन्हें गिरवी रख दो। बाद में छुड़ा लेना।'[7]

'कस्तूरी कुण्डली बसै' 'डॉ0 नरेश' के उपन्यास के पात्र महंत जी के मठ में रहने वाले 20–22 साधु, हर रोज आने–जाने वाले 5–10 फकीर, 15 चूहडे–चमार, नाई–धोबी जो बाबा लोगों की सेवा करते हैं। छह आदमी गाय, भैंसे, घोडें, हाथियों पे लगे हुए हैं। इतने बड़े मठ को चलाने की जिम्मेदारी महंत जी की है। मजबूर होकर इन सबका पेट–पालने के लिए उन्हें सूदखोरी का धंधा भी करना पड़ता है। विघटन का एक उदाहरण देखिए–

''तुम चारों भाई कान खोल के सुन ल्यौ।''
निर्णायत्मक स्वर में बोले महंत जी।
''चारों को पाँच–पाँच सौ देने को तैयार हूँ, पर सरत सकै है। सोना–चाँदी गिरवी रख जाऔ, पैसा ले जाऔ।
सूद साल भर का पेसगी रहैगा।''
''इतने कठोर न बनो महाराज, हम आपके रखने के है।''
सबसे बड़े भाई ने प्रार्थना की।
''तो हम मठ चलाएँ कि गंगातट पर झौंपड़ी जा छुआवै।'

ब्यौहार की बात ब्यौहार कै साथ। जाऔ घर में सलाह कर लौ। मंजूर हो तो सवेरे मुनीम जी कै रहतै जेवर–एवर ले आना, नहीं तो कोई दूसरा दरवाजा देखो।'' आलोच्य उपन्यासकारों का व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली है। इनकी लेखनी तीखी हैं।

सन्दर्भ

1. [1] शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय 'बड़ दीदी' पृ014–15
2. [1] देशदीपक त्रिपाठी 'दहशतगर्द' पृ0 45–46
3. [1] डॉ. अजय शर्मा 'खुली हुई खिड़की' पृ0 79
4. [1] कमलिनी कौल, तृशिता, पृ0 59
5. [1] ज्ञान प्रकाश 'विवेक', गली नम्बर तेरह, पृ0 103
6. [1] वसिष्ठविहितां वृद्धिं सजेद्वितावर्धिनीम्।
7. अषीति भागं गृह्यीयान्मासार्धुषिकः षते।।
8. अश्टम अध्याय, श्लोक – 140
9. मनुस्मृतिः हिंदी व्याख्याकार
10. पं0 हरगोविंद शास्त्री, पृ0 391
11. [1] वेणीमाधव रामखेलावन, निछावर, पृ0 20